International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; 2017; Page No. 147-148

भूमि संरक्षण की वैदिक अवधारणा

डॉ. अमित शर्मा

सहायक प्रवक्ता (अनुबंध), सी. आर. किसान महाविद्यालय, जीन्द (हरियाणा), भारत

प्रस्तावना

आज विश्व में जितनी भी समस्याएँ सामने आ रही हैं, उनमें पर्यावरण के संकट ने प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया है। वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व प्राकृतिक आपदाओं के संकट से जूझ रहा है। पर्यावरण के संकट से उभरने के लिए पर्यावरणीय जागरूकता की आवश्यकता है। जिससे पर्यावरण को संतुलित एंव अनुकूल बनाया जा सके।

सृष्टि की संरचना के साथ ईश्वर ने हमें सुन्दर दृश्यों से परिपूर्ण, मातृवत् सबको धारण करने वाली रत्नगर्भा पृथ्वी दी, पृथ्वी पर अनेक जीव–जन्तु, आकर्षक छटा एवं औषधीय गुणों से युक्त मनमोहक सुगन्धित वनस्पतियाँ, ऊँची पर्वत शृंखलाएँ तथा प्राणि–जगत् के लिए देवतुल्य वायु प्रदान की, ईश्वर प्रदत्त प्रकृति के ये सभी उपादान हमारे लिए स्वस्थ एवं सन्तुलित वातावरण उत्पन्न करते हैं।

भारत में वैदिककाल से ही प्रकृति एवं पुरूष के सम्बन्ध का वर्णन प्राप्त होता है। प्रकृति और पुरूष को जीवन का अभिन्न अङ्.ग माना गया है, जिसके स्थायी तन्त्र की रचना पाँच तत्त्वों–वायु, जल, भूमि, वनस्पति और जीव से मिलकर हुई है और उनमें पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है, जिससे प्रकृति और अन्य कारकों के बीच सन्तुलन बना रहता है, किन्तु औद्योगिकरण एवं आधुनिकता की दौड़ में विकास की ओर उन्मुख होकर मनुष्य ने अपने उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रकृति का स्वच्छन्द दोहन किया है, जिससे प्रकृति और मानव का सम्बन्ध विकृत हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप आज विश्व के समक्ष पर्यावरण–प्रदूषण जैसी समस्या उत्पन्न हो गई है।

वैदिक काल में ऋषि पर्यावरण की स्वच्छता एवं शुद्धता के प्रति सतत् जागरूक थे। उन्होंने शुद्ध पर्यावरण के लाभ एवं प्रदूषण से होने वाली हानियों की ओर संकेत कर मानव को पर्यावरण संरक्षण के प्रति सजग किया। संस्कृत विधा के अनुसार 'परितः आवृणोति इति पर्यावरणम्' अर्थात् वह बाह्य आवरण जो हमें आच्छादित करे, उसे ही पर्यावरण कहते हैं। जलमण्ड़ल, स्थलमण्डल तथा वायुमण्डल तीनों सम्मिलित रूप से समग्र पर्यावरण की संरचना करते हैं। वे सभी पदार्थ पर्यावरण के अङ्ग हैं, जो किसी न किसी रूप में पृथ्वी की जैविक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इसी सन्दर्भ में हम वेद में भूमि संरक्षण से सम्बन्धित तथ्यों से अवलोकन करेंगे।

सौरमण्डल के नौ ग्रहों में से पृथ्वी एकमात्र ऐसा ग्रह है, जिस पर जीवन सम्भव है। केवल पृथ्वी पर ही जीव–जन्तु एवं पेड़–पौधे जीवित रह सकते हैं, क्योंकि यहाँ जीवन की वे सभी परिस्थितियाँ विद्यमान है जो किसी जीव को जीवित रखने के लिए आवश्यक होती हैं। पृथ्वी के अस्तित्व के बिना न तो सृष्टि की कल्पना की जा सकती है और न ही पर्यावरण की। मनुष्य द्वारा पृथ्वी का अनवरत दोहन के कारण भूमि प्रदूषण की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ''माता भूमिः पुत्रो अहं पृथ्विया''[1] कहकर जिस पृथ्वी की ऋषियों ने वन्दना की थी वही आज अनावश्यक दोहन के कारण प्रदूषित हो गई है। वेदों में भूमि संरक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि पृथ्वी माता हमें मधुर दूध एवं अन्न जल देती है, द्युलोक अमृत देता है–

''येभ्यो मातामधुमत् पिन्वते स्वः। पीयूषं द्यौः।।''[2]

यजुर्वेद में भी पृथ्वी आदि को हानि न पहुँचाने के लिए कहा गया है। यथा–

''द्यां मा लेखीः, अन्तरिक्षं मा हिंसीः, पृथिव्या सम्भव।''[3]

यजुर्वेद में ही राजा राज्यभिषेक के समय पृथ्वी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे पृथ्वी! तुम हमें हानि न पहुँचाना और न हम तुम्हें हानि पहुँचाऐंगे।

''पृथ्वी मातर्मा मा हिंसीः मो अहं त्वाम्।''[4]

अथर्ववेद का धर्म राष्ट्रीय प्रेम या मातृभूमि की संकुचित धारणा का पोषक नहीं है अपितु वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धान्त को मान्यता देता है। सम्पूर्ण पृथ्वी माता है, हम सब उसके पुत्र हैं, यह भावना एक बार नहीं अनेक बार दोहराई गई है[5] अतः उपनिषद के मातृदेवो भवः वाक्य का अर्थ केवल जननी की सेवा करना मात्र नहीं रह जाता है अपितु धरती माँ की सेवा–सुरक्षाभाव को अभिव्यक्त करता है।

अथर्ववेद के ऋषि ने भूमि संरक्षण को इसलिए भी आवश्यक माना है क्योंकि भूमि पर ही विभिन्न प्रकार के पेड़ और वनस्पतियाँ पैदा होती हैं।

''यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।[6]
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।।''

अतः आत्मरक्षणार्थ पृथिवी की रक्षा अत्यावश्यक है। जब हम इसकी देवता के रूप में उपासना करेंगे तो इसके प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न होगा और सहज ही पृथिवी की रक्षा होगी और उस स्थिति में पर्यावरण स्वतः ही सुरक्षित एवं संरक्षित हो जाएगा।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ लोभ, मोहादि उसके विवेक को नष्ट कर देती है जिस कारण मनुष्य पृथिवी के साधनों का अन्धाधुन्ध दोहन करने लगता है और जीवन के लिए आवश्यक जल, वायु और मृदा सब प्रदूषित हो जाते हैं। यह प्रवृत्ति वैदिक काल में ही उजागर हो गई थी, तभी वैदिक ऋषि ने कहा है–

मैं जो बोलता हूँ मधुवत् बोलता हूँ। जो कुछ देखता हूँ वह सब मेरा सहायक हो। मैं प्रकाशमान्, तेजस्वी, दीप्तिमान् और ज्ञानवान् होकर दूसरे जो भूमि को दूह लेते हैं, उनका नाश करता हूँ।

''यद्वदामि मधुमतवदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा,
विषीयानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः।''[7]

अथर्ववेद में भूमिसूक्त के ऋषि की मान्यता है कि भूमि की रक्षा जैवमण्डल का संरक्षण, तन्द्राहीन व आलस्य रहित व्यक्ति ही करते हैं।

"यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानी देवा, भूमि पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधुप्रिया दुहामयो उक्षतुवर्चसो।"[8]

पृथिवी के रत्नगर्भा रूप ने मानव को सदा से ही ललचाया है और अपनी लोभ प्रवृत्ति को प्रश्रय देने के सिलसिले में आवश्यकता से अधिक खनन करके मनुष्य ने भूमि को हानि पहुँचाई है तथा जलवायु को प्रदूषित किया है। पृथिवी के साधनों–संसाधनों को आवश्यकता से अधिक उपयोग में लाना, विलासता के लिए तथा उपभोग प्रवृत्ति के वशीभूत होकर अत्याचार करना, भूमि के प्रति हिंसा करना है। वैदिक ऋषि इस हिंसा के विरूद्ध है। वह त्यागमय दानशीलता से, यज्ञ से, तप से भूमि का संरक्षण करता है। तभी वह अधिकारपूर्वक आपनी माँ धरती से प्रार्थना भी कर पाता है।
हे सबको सहारा देने वाली पृथिवी हमारी हिंसा न करो। हमारा नाश मत करो।

"माँ हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीधरि।"[9]

अथर्ववेद के ही एक मन्त्र में भूमि के संरक्षण, संवर्धन के प्रति चिन्ता व संवेदना प्रकट करते हुए कहा गया है कि पृथिवी को अनेक प्रयोजनों के लिए खोदना पड़ता है, जैसे–बीज बोने के लिए, खनिज पदार्थों को निकालने के लिए, कुआं, तालाब आदि के लिए, इसलिए वेदों में प्रार्थना की गई है कि पृथिवी में हुआ स्थान शीघ्र भर जाए व हम पृथिवी खोदते समय सतर्क रहे जिससे उसके मर्म को चोट न पहुँचे।

"यत्ते भूमे विश्वनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वारि मा ते हृदयमर्दिदम्।"[10]

आधुनिक मानव ने प्रमादवश, असावधानीपूर्वक तथा लोभवश पृथिवी की उर्वरता, उसकी खानों, जलस्त्रोतों का अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दोहन किया है। दूसरी और भूमि को प्रदुषित करने वाले अनेक पदार्थ हैं–
औद्योगिक विकास, बढ़ती जनसंख्या, वनों का नाश आदि अनेक कारण हैं, जो पृथिवी को प्रदूषित कर रहे हैं। परिणामस्वरूप पृथिवी बचाओ की गुहार आज कर्णभेदी गुहार बन गई हैं। अथर्ववेद में मनुष्य सर्वसहा सहनशील पृथिवी की भाँति बनने की कामना की गई है।

"अहमास्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभिषाडास्मि विश्वाषडाशानाशां विषासहिः।।"[11]

अर्थात् मैं सब सह लेने वाला यश और प्रतिष्ठा से उत्कृष्ट भूमि की प्रत्येक दिशा में विशेष विजयी, सब और पराक्रम करने वाला, सब शत्रुओं का नाश करने वाला हूँ। वर्तमान युग में जैवमण्डल के प्रदूषण रूपी शत्रओं भूमि के प्रदूषकों रूपी शत्रुओं को पराजित करने का संकल्प यदि मानव कर ले तो हमारी यह धरा सस्य–श्यामला बन जाए और मानव जीवन और उसका अस्तित्व भविष्य के लिए भी खुशहाल हो जाए।

सन्दर्भ सूची

1. अथर्ववेद 12.1.12
2. ऋग्वेद 10.63.3
3. यजुर्वेद 10.23
4. वही 10.23
5. अथर्ववेद 12.1.10, 9, 23
6. वही 12.1.27
7. वही 12.1.58
8. वही 12.1.7
9. वही 12.1.34
10. वही 12.1.35
11. वही 12.1.54